अध्याय 2

वास्तविक हिंदी साहित्य का प्रारंभ— भक्तिकाल (1400-1700)

भक्ति के उदय का सामाजिक आधार

भक्ति काव्य भक्ति आंदोलन पर आधारित है। यह आंदोलन सामाजिक और वैचारिक है। भक्ति में धर्म साधना का नहीं, भावना का विषय बन गया है। इसीलिए उसे धर्म का रसात्मक रूप कहा जाता है। हिंदी भक्ति साहित्य की परंपरा महाराष्ट्र के संत नामदेव से मिलने लगती है। संत नामदेव का जन्म 1267 में हुआ था। संत नामदेव ने हिंदी में भी रचनाएँ की हैं। भक्ति काव्य-धारा के अंतर्गत हिंदी में कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, रैदास और मीरा जैसी महान प्रतिभाओं ने रचनाएँ कीं। इन्हीं की रचनाओं के कारण भक्ति-युग को हिंदी साहित्य का स्वर्ण-युग कहा जाता है।

प्रश्न यह है कि भक्ति आंदोलन का सामाजिक-ऐतिहासिक आधार क्या था? पं. रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, भक्ति-भावना का कारण भारत में आक्रमण-कारी मुसलमानों का विजेता होना है। वे यह तो मानते थे कि भक्ति आंदोलन का सूत्रपात दक्षिण भारत में हुआ, लेकिन उनका विचार था कि अपने पौरुष से हताश हिंदू जाति के लिए भगवान की भक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था! संभवत: आचार्य शुक्ल उत्तर भारत की हिंदू जनता की पराजित मानसिकता को रेखांकित करना चाहते हों, जो भक्ति के प्रचार-प्रसार के लिए अनुकूल भूमि बनी।

पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार भक्ति आंदोलन भारतीय चिंता-धारा का स्वाभाविक विकास है। उत्तर भारत के नाथ-सिद्धों की साधना, अवतार, लीला की अवधारणा और जातिगत कठोरता दक्षिण भारत से आई हुई भक्ति धारा में घुल-मिल गई। द्विवेदी जी के अनुसार, भक्ति आंदोलन और भक्तिकाल का साहित्य लोकोन्मुख है। वह करुणा एवं परदुखकातरता से युक्त है। द्विवेदी जी कबीर की तेजस्विता को जुलाहा जाति की सामाजिक मर्यादा के प्रति असंतोष की भावना से जोड़ते हैं। हिंदुओं की पराजित भावना भक्ति का कारण होती तो वह उत्तर भारत में पहले आती।

इस बीच मध्यकाल पर काम करने वाले इतिहासकारों, विशेषत: इरफ़ान हबीब और रामशरण शर्मा ने अपने कार्यों से इस क्षेत्र पर ऐसा प्रकाश डाला है कि हिंदी के भक्ति काव्य के विषय में हमें नई बातों का पता चलता है। इरफ़ान हबीब के अनुसार उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन की निर्गुण धारा के उत्थान में शिल्पियों और जाटों-किसानों की प्रमुख भूमिका रही है। वे निर्गुण धारा को 'एकेश्वरवादी धारा' कहते हैं। तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी में नए शासकों की सत्ता स्थापित होने पर विलास-सामग्री और सुविधाओं की माँग बढ़ी। केंद्रीय सत्ता (खिलजी-तुगलक-सूरी शासकों की) स्थापित होने पर सड़कों, भवनों आदि का निर्माण तेज़ी से होने लगा। इससे अवर्ण, शिल्पियों की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ। आर्थिक स्थिति बेहतर होने पर उनमें अपनी सामाजिक मर्यादा को ऊपर उठाने की भावना पैदा हुई। निर्गुण-पंथ के अवर्ण संतों की भावना का सामाजिक आधार यही था।

इस देश में जुलाहों की आर्थिक स्थिति प्राचीनतर काल से अच्छी रही है। उनमें अपनी सामाजिक मर्यादा के प्रति असंतोष का भाव भी पहले से रहा है। तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी में उनके साथ-साथ अन्य अवर्ण शिल्पियों की स्थिति भी बेहतर हुई होगी। खेतों की सिंचाई के नए तरीकों के उपयोग के कारण (इरफ़ान हबीब के अनुसार) जाटों-किसानों की स्थिति भी बेहतर हुई होगी। और ठीक इसी समय दक्षिण भारत से प्रवाहित दर्शन और विचारधारा ने भक्ति आंदोलन को तेज़ी से प्रचारित-प्रसारित किया।

यह तो उत्तर भारत की बात हुई। लेकिन यदि भक्ति आंदोलन की लहर दक्षिण भारत से उत्तर में आई तो हमें यह भी पता लगाना होगा कि दक्षिण भारत में वे कौन-सी परिस्थितियाँ थीं जिनके कारण भक्ति भावना ने वहाँ आंदोलन का रूप ग्रहण किया।

दक्षिण भारत में पहली शताब्दी के बाद अनेक शताब्दियों तक सत्ता पराक्रमी शासकों के हाथों में रही। परवर्ती चोल साम्राज्य के शासकों के पहले ही करिकाल (चोलवंशी शासक) ने कावेरी के जल को नियंत्रित करके सिंचाई की बेहतर व्यवस्था की। श्रीलंका के युद्धबंदियों से कावेरी के मुहाने पर पुहार का बंदरगाह तैयार करवाया। उसके राज्य में व्यापार-उद्योग की अभूतपूर्व उन्नति हुई। पल्लव शासक नरसिंह वर्मन ने स्थापत्य को अभूतपूर्व बढ़ावा दिया। उसने कांची का राजसिंहेश्वर मंदिर बनवाया। उसके राज्य में शिल्पियों का सम्मान बहुत बढ़ा। बुनकरों को दक्षिण में वैश्यों-व्यापारियों जैसा सम्मान मिला।

इन सब से प्रकट है कि उत्तर भारत में शिल्पियों और किसानों की आर्थिक बेहतरी के काफी पहले दक्षिण भारत के शिल्पियों और किसानों की आर्थिक स्थिति बेहतर हो गई थी। भक्ति के आद्य आचार्य रामानुज कांचीपुरम के ही थे। उनके एक गुरु कांचीपूर्ण शूद्र थे। अलवार दक्षिण के प्रारंभिक भक्त-कवि थे। उनमें से अनेक अवर्ण थे। एक महिला भक्त अंदाल थीं जिन्हें दक्षिण की मीरा कहा जाना चाहिए। वे मीरा से कई शताब्दी पूर्व की थीं।

हम जानते हैं कि हिंदी के भक्ति काव्य में अवर्णों और नारियों का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान है। भक्तिकाल के बाद फिर आधुनिक काल में ऊपर की बातें उस सामाजिक-आर्थिक स्थिति को प्रकट करती हैं जिसने शिल्पियों, अवर्णों को सामाजिक मर्यादा की दृष्टि से ऊपर उठने की प्रेरणा दी। लेकिन यह बिना किसी पुष्ट विचारधारा के संभव नहीं था। रामानुजाचार्य (11वीं शती) का विशिष्टाद्वैत दर्शन भक्ति का दार्शनिक या विचारधारात्मक आधार प्रस्तुत करता है। विशिष्टाद्वैत शांकर अद्वैत की तरह जगत को मिथ्या नहीं मानता। रामानुज का ब्रह्म विशेषण से युक्त अर्थात् विशिष्ट है। उनके अनुसार जगत मिथ्या नहीं, वास्तविक है। ब्रह्म जीव और जगत को धारण करता हुआ उसका नियमन करता है। जगत को वास्तविक मानकर उसको महत्त्व देने में ही भक्ति की लोकोन्मुखता निहित है। यदि लोक सत्य है, तो लोक-पीड़ा उपेक्षणीय नहीं। भक्तों ने लोक-पीड़ा को इतना महत्त्व नहीं दिया है। इसलिए वे करुणा के अन्यतम रचनाकार हैं।

कहा जाता है कि 'भक्ति द्रविड़ उपजी, लाए रामानंद'। रामानंद (1400-1470) रामानुज की ही परंपरा के आचार्य थे। भक्ति साधना के रूप में तो पहले से ही थी। रामानुजाचार्य ने उसे लोकोन्मुख बनाकर दार्शनिक-वैचारिक आधार दिया और रामानंद के व्यक्तित्व से वह उत्तर भारत में आंदोलन और साहित्य का स्रोत

बनी। एक महत्त्वपूर्ण बात यह कि आधुनिक भारतीय भाषा हिंदी (और अन्य भारतीय भाषाएँ) धार्मिक वाङ्मय की अभिव्यक्ति का माध्यम बनीं।

नाथ-सिद्धों की साधना में अंतस्साधना पर बहुत बल था। सरहपा सहज साधना के विश्वासी साधक थे। वे माया को भी त्याज्य नहीं मानते थे। उनके यहाँ चित्त की निर्मलता और करुणा को महत्त्व दिया गया है। नाथ बाह्याचार का विरोध करते थे। उनकी साधना भक्ति-भावना में घुल-मिल गई। फलतः उत्तर भारत में आकर भक्ति-साधना उतनी निरीह नहीं रह गई। वह वर्ण-व्यवस्था और कर्मकांड के प्रति आक्रामक बनी। उत्तर भारत में सूफ़ी साधना के रूप में इस्लाम भी भक्ति-मार्ग का सहचर बना।